## संपादकीय

# सत्यांश

**गीता और गेंद का रिश्ता**

**फुटबॉल** विश्वकप प्रतियोगिता में कड़े मुकाबले के बीच इस बार जर्मनी ने अर्जेंटीना को पराजित किया। ब्राजील, इटली, स्पेन, फ्रांस, जापान, अमेरिका, नीदरलैंड, इंग्लैंड, बेल्जियम जैसे देशों की फुटबॉल टीमें अच्छी हैं। भारत का भी यह अति प्राचीन खेल है, परन्तु वर्तमान में बदतर स्थिति के कारण इसे विश्वकप में भाग लेने का मौका ही नहीं मिला, धीरे-धीरे यह आम जीवन से कटता जा रहा है, जो चिंतनीय है।

स्वामी विवेकानंद ने कहा है कि भगवद्गीता का मर्म समझने के लिए फुटबॉल खेलना चाहिए। जो फुटबॉल नहीं खेल सकता, वह गीता को भी नहीं जान सकता। फुटबॉल और गीता का यह रिश्ता? फिर यदि फुटबॉल का गीता से संबंध है तो क्रिकेट, हॉकी, वॉलीबॉल आदि अन्य खेलों से भी होगा। लेकिन विवेकानंद के समय ये खेल फुटबॉल जितने प्रचलित नहीं थे कम से कम भारत में। कन्दुक या गेंद का भारत के पुरातन ग्रंथों में उल्लेख है। श्रीकृष्ण द्वारा कालिया नाग नाथने का काम भी गेंद के यमुना में चले जाने के कारण हुआ था- 'मारत गेंद गिरै यमुना में।' तात्पर्य यह है कि खेल खेल-भावना से खेला जाए, तो मनोरंजन के साथ व्यायाम, योग, ध्यान के बनिस्बत आसान तरीके से शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा परिष्कृत व शक्तिशाली होती है। कोई भी खेल शारीरिक ऊर्जा से खेला जाता है, पर वह मन-मस्तिष्क से परे नहीं होता। खेल के लिए मानसिक ध्यान का होना जरूरी है। योग और ध्यान भी हमें समय-विशेष में ध्यानस्थ होना सिखाते हैं। जिस चीज पर ध्यान रखना है, उससे मन को न भटकने देने की क्रिया-शक्ति ध्यान है। हो सकता है कि योग-ध्यान के रास्ते न आकर एकाग्र-शक्ति दाय रूप में प्राप्त हो। बिना एकाग्रचित्त ध्यान के सर्वोत्कृष्ट चरमावस्था तक नहीं पहुँचा सकता। यदि कोई व्यक्ति फुटबॉल खेलने में पूर्णतया तल्लीन होने की क्षमता रखता है, तो वह गीता में भी पूर्णरूपेण लीन हो सकता है - यह मनोवैज्ञानिक यथार्थ है।

भगवद्गीता को आँखों से पढ़ा जा सकता है, कानों से सुना जा सकता है, मुँह से उच्चरित किया जा सकता है, कण्ठस्थ किया जा सकता है, परंतु इन शारीरिक क्रियाओं से ग्रंथ का मर्म जानना मुश्किल है। हाँ, रहस्य तक पहुँचने में ये सहायक सिद्ध हो सकते हैं। गीता की गहराई की वास्तविक अनुभूति मन-आत्मा के माध्यम से संभव है जो साधारणत: शरीर के वश में नहीं होते, शरीर उनके बस में होते हैं और नहीं भी होते। खेलों में शरीर की ऊर्जा बुद्धि के अधीन काम करती है, कभी-कभी थोड़ी बुद्धिहीनता के कारण विशाल शारीरिक ऊर्जा पस्त हो जाती है। वस्तुत: मन-मस्तिष्क और शरीर एक दूसरे के प्रति जितने पूरक होते हैं, उतनी ही पारंगतता सिद्ध होती है। मन, हृदय, बुद्धि, आत्मा को धारण करने के कारण शरीर महत्त्वपूर्ण है, इसके बिना कैसी-किसकी बुद्धि, किसका-कैसा मन? पर यही बात आत्मा के संदर्भ में नहीं कही जा सकती। हम सब जानते हैं कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का वास होता है। गीता भी इतनी तो कहती है कि यह आत्मा बलहीनों को प्राप्त नहीं होती - 'नायं आत्मा बलहीनेन लभ्य:।' बलहीन का मतलब शारीरिक-मानसिक शिथिलता से है। शरीर को स्वस्थ, सुंदर और बलिष्ठ बनाने के लिए तरह-तरह के उपक्रम धरती पर इंसान के आगमन के समय से विकसित होकर प्रचलित रहे हैं। फुटबॉल जैसे खेल में बहुतेरे व्यायामों की क्रियाएँ स्वत: हो जाती हैं। इससे शरीर सुडौल, फुर्तीला, लचीला व चुस्त-दुरुस्त होता है। प्रायोजित योग, ध्यान, व्यायाम से यह खेल अधिक सहज-सरल-सरस होता है। इससे मन-मस्तिष्क तथा हृदय विशाल व उदार बनता है। खेल-भावना के प्राबल्य होने पर जिंदगी में लाभ-हानि और सफलता-असफलता खेल की हार-जीत की तरह सदैव मनोरंजन ही प्रदान करती है। श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दु:ख को समान समझकर युद्ध करने से व्यक्ति पाप को प्राप्त नहीं होता -

सुख-दु:ख समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।

जय-पराजय में सम रहने का भाव खेल-भावना होने पर ही संभव है। वैसे भी पूरा जीवन खेल ही है, लेकिन पहले वास्तविक लगता है और बीत जाने पर खेल। जो भी हो, आजकल जब खेल में ही खेल-भावना नदारत है तो फिर जीवन-युद्ध में खेल भाव कहाँ से आए?

खेल-भावना से जीवन जीने पर तनाव नहीं होता, व्यक्ति अपने सन्निकट होता है जैसा कि योग-ध्यान की उच्चावस्था में होता है। शारीरिक श्रम करने वालों के लिए काम ही व्यायाम है। जो लोग मानसिक श्रम द्वारा कार्य करते हैं, उनके लिए कुछएक घंटे शारीरिक श्रम करना लाभदायक और आवश्यक है। केवल मानसिक परिश्रम करते रहने से शरीर कमजोर होता है और स्वयं मस्तिष्क की केन्द्रीयता घटती है। इसलिए न्यूनतम शारीरिक श्रम सबके लिए सहज स्वीकार्य होना चाहिए। पहले यह संकल्प व्यक्त भी हुआ है, 'आओ श्रम का दान करें, मिलकर नवनिर्माण करें।' अदृश्य व सूक्ष्म चीजें ज्यादा शक्तिशाली होती हैं, पर ऐसे केवल आत्मिक बल, आत्मविश्वास, धैर्य, साहस, पराक्रम जैसे गुणों द्वारा विश्व प्रपंचों की दुष्टताओं-क्रूरताओं से परिपूर्ण हिंसक वृत्तियों का सामना नहीं किया जा सकता। रामधारी सिंह 'दिनकर' के शब्दों में-

कौन केवल आत्मबल से जूझकर, जीत सकता देह का संग्राम है?
पाशविकता खड्ग जब लेती उठा, आत्मबल का एक वश चलता नहीं।

आत्मबल शरीर-बल के भीतर ही सुरक्षित रह पाता है। शारीरिक अक्षमता व आर्थिक विपन्नता की स्थिति में यह क्षीण होने लगता है। इसलिए ओज-उत्साह के संवर्द्धन के लिए शारीरिक जोर जरूरी है। 'दिनकर' के ही माध्यम से पुन: -

पत्थर-सी हों मांसपेशियाँ, लोहे-सा भुजदण्ड अभय,
नस-नस में हो लहर आग की, तभी जवानी पाती जय।

मनोरंजन का प्राचीन खेल फुटबॉल और सारगर्भित ग्रंथ गीता एक दूसरे के पूरक हैं। पहला खेल-खेल में जीवन की अर्थवत्ता तलाशता है तो दूसरा जीवन की उपयोगिता खेल-जैसा बताता है। पहला अपनी प्रकृति में सहज मनोरंजक-मनमोहक है, तो दूसरे की प्रवृत्ति गूढ़ उपदेशात्मक है। पहले में भौतिक शरीर के क्रियाकलापों द्वारा मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक एवं आत्मिक ऊर्जा का संचयन होता हैं, वहीं दूसरे में आत्मबोध द्वारा शारीरिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक उन्नयन। स्वामी विवेकानन्द के देहावसान के सौ साल से ऊपर हो गए। तब से लेकर अब तक और उनके देहावसान के पहले भी न जाने कितने गीता-ज्ञानी हुए, फुटबॉल खिलाड़ी आए और गए, पर क्या किसी ने गीता और गेंद का परस्पर पूरक अर्थ-संबंध समझा?